

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 82 — कुरुक्षेत्र में पुनर्मिलन

5 October 2026



महाग्रहण से मलिन हुए सूर्य के नीचे कुरुक्षेत्र द्वारका और व्रज का मिलन-स्थल बन जाता है — और अपने प्रेमियों से चिरकाल बिछुड़े श्रीकृष्ण फिर नन्द और यशोदा की गोद में बैठते हैं और गोपियों के नयनों में समा जाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस बयासीवें अध्याय में शुक्रदेवजी हमें स्यमन्तपञ्चक की ग्रहण-तीर्थयात्रा में ले चलते हैं, जहाँ यदुवंशी भारत के राजाओं और व्रज के गोपों से मिलते हैं, और श्रीकृष्ण गोपियों को सिखाते हैं कि उनकी भक्ति अमरत्व देती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 82 (द्व्यशीतितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: श्रीकृष्ण और बलराम का व्रजवासियों से मिलन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी; बीच-बीच में कुन्ती, वसुदेव, राजागण, रोहिणी-देवकी, श्रीकृष्ण और गोपियों के वचन
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: कुरुक्षेत्र का स्यमन्तपञ्चक क्षेत्र, पूर्ण सूर्यग्रहण के समय
- केंद्रीय विषय: ग्रहण की तीर्थयात्रा; राजाओं और स्वजनों का मिलन; नन्द, यशोदा और गोपियों से पुनर्मिलन; श्रीकृष्ण का उपदेश और गोपियों की प्रार्थना
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 1-48
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पूर्व अध्याय का संदर्भ

इक्यासीवें अध्याय में निर्धन ब्राह्मण सुदामा ने श्रीकृष्ण को मुट्ठी-भर चिउड़ा अर्पित किया और घर लौटकर कुटिया की जगह महल पाया; यह समझकर कि प्रभु करुणावश प्रायः धन रोक लेते हैं, वे अनासक्त रहकर प्रभु के धाम को प्राप्त हुए। अब शुकदेवजी उस तीर्थयात्रा की ओर मुड़ते हैं जिसने ग्रहण के अँधेरे में समस्त भारत को एक क्षेत्र में जुटा दिया।

महाग्रहण और स्यमन्तपञ्चक की तीर्थयात्रा

शुकदेवजी ने परीक्षित से कहा कि एक बार, जब श्रीकृष्ण और बलराम द्वारका में रह रहे थे, सूर्य का पूर्ण ग्रहण लगा — ऐसा, जैसा कल्प के अन्त का अन्धकार हो। इसकी सूचना पहले से पाकर लोग पुण्य और कल्याण की कामना से चारों दिशाओं से स्यमन्तपञ्चक नामक पवित्र क्षेत्र की ओर चल पड़े। यहीं शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ परशुरामजी ने पृथ्वी को क्षत्रियहीन करते हुए राजाओं के रक्त से पाँच बड़े कुण्ड भरे थे; और यहीं उन सर्वसमर्थ भगवान् ने, कर्म से अछूते होकर भी, लोक को शिक्षा देने के लिए साधारण मनुष्य की भाँति पाप-शुद्धि का यज्ञ किया था। इस क्षेत्र में पाप धोने की इच्छा से भारतवर्ष की प्रजा आई, और उनके साथ वृष्णिवंशी भी — वृद्धों में अक्रूर, वसुदेव और उग्रसेन; युवाओं में गद, प्रद्युम्न और साम्ब — जबकि अनिरुद्ध और सेनापति कृतवर्मा, सुचन्द्र, शुक और सारण के साथ द्वारका की रक्षा के लिए पीछे रह गए।

सोने के हार, दिव्य पुष्पमालाएँ, उत्तम वस्त्र और कवच धारण किए यदुवंशी अपनी पत्नियों सहित देवविमानों-से चमकते रथों पर, लहरों-से उछलते घोड़ों पर और गरजते मेघों-से चिंघाड़ते हाथियों पर चले, विद्याधरों-से दीप्त पैदल सेवक साथ थे — मानो देवता ही आकाश-मार्ग से जा रहे हों।



सोने और दिव्य पुष्पों की मालाओं से सजे यदुवंशी अपनी पत्नियों सहित चमकते रथों, लहरों-से घोड़ों और मेघों-से हाथियों पर ग्रहण-तीर्थ की ओर चलते हैं, मानो देवता आकाश-मार्ग से जा रहे हों (श्लोक 7-8)।

पुण्यक्षेत्र में स्नान, उपवास और दान

कुरुक्षेत्र पहुँचकर उन महाभाग्यशाली यदुवंशियों ने पवित्र जल में स्नान किया, एकाग्र मन से ग्रहण का उपवास रखा, और ब्राह्मणों को वस्त्र, मालाओं और स्वर्ण से सजी गौएँ दान कीं। ग्रहण छूटने पर उन्होंने परशुराम के नाम से जुड़े कुण्डों में फिर स्नान किया और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराया — सब एक ही प्रार्थना के साथ: “श्रीकृष्ण में हमारी भक्ति बनी रहे।” फिर ब्राह्मणों की अनुमति से उन्होंने पारण किया और वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम किया।

मित्रों और स्वजनों का पुनर्मिलन

विश्राम के बाद यदुवंशी वहाँ आए मित्रों और स्वजनों को देखने लगे: मत्स्य, उशीनर, कोसल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त और केरल के राजा, और सैकड़ों अन्य — मित्र भी, प्रतिपक्षी भी; और उन सबके बीच अपने प्रिय सखा नन्द और गोप, तथा वे गोपियाँ जो श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए इतने समय से व्याकुल थीं।

एक-दूसरे को देखने के हर्ष से उनके हृदय-कमल और मुख-कमल खिल उठे; वे कसकर लिपट गए, अश्रुधारा बह चली, रोमांच हो आया, वाणी रूँध गई। स्त्रियाँ भी मुस्कान और स्नेहभरी चितवन से एक-दूसरी का स्वागत करके प्रेमाश्रुओं के साथ गले मिलीं। छोटों ने बड़ों को प्रणाम किया और अपने से छोटों का प्रणाम पाया, और कुशल-क्षेम पूछकर सब श्रीकृष्ण की ही बातें करने लगे, क्योंकि और कोई विषय उनके मन को बाँध न सका।

कुन्ती का विलाप और वसुदेव का उत्तर

कुन्ती ने अपने भाई-बहनों को उनके बच्चों सहित, अपने माता-पिता, भाभियों और स्वयं श्रीकृष्ण को देखा, तो उनसे बातें करते हुए वर्षों के शोक को कुछ शान्ति मिली। फिर भी पुराने घावों से कोमल हृदय लिए वे अपने भाई वसुदेव की ओर मुड़ीं। “आर्य,” उन्होंने कहा, “मैं अपने को ऐसी समझती हूँ जिसकी कोई अभिलाषा पूरी न हुई, क्योंकि तुम-जैसे श्रेष्ठजनों ने भी विपत्ति में मुझे याद न किया। जिस पर दैव प्रसन्न न हो, उसे मित्र, सम्बन्धी, पुत्र, भाई, यहाँ तक कि माता-पिता भी भूल जाते हैं।”

श्रीवसुदेव उवाच

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान् नरान् ।

ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथ वा ॥ २० ॥

śrī-vasudeva uvāca amba māsmān asūyethā daiva-kṛīḍanakān narān īśasya hi vaśe lokah kurute kāryate 'tha vā

अर्थ: श्रीवसुदेवजी ने कहा: बहन, हमें दोष मत दो — हम मनुष्य तो दैव के खेलौने मात्र हैं। यह संसार ईश्वर के वश में है; मनुष्य जो कुछ करता है, वह उन्हीं से कराया जाता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 20)

वसुदेवजी ने उन्हें स्मरण कराया कि कंस से सताए हुए यदुवंशी किस प्रकार दिशा-दिशा में बिखर गए थे, और अब कहीं जाकर विधाता ने उन्हें अपना स्थान लौटाया है।

राजाओं का श्रीकृष्ण-दर्शन और यदुवंश की प्रशंसा

वसुदेव, उग्रसेन और अन्य यदुवंशियों से सम्मानित होकर सब राजा अच्युत भगवान् के दर्शन से परम आनन्द में भर गए। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित गान्धारी, पत्नियों सहित पाण्डव, कुन्ती, सृञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तिभोज, विराट, भीष्मक, महान् नग्नजित्, पुरुजित्, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलानरेश, मद्र और कैकय के राजा, युधामन्यु, सुशर्मा, पुत्रों सहित बाह्लीक, और युधिष्ठिर के अनुयायी सब राजा — सभी ने रानियों सहित श्रीकृष्ण के उस स्वरूप को, जो समस्त शोभा का धाम है, विस्मय से निहारा। बलराम और श्रीकृष्ण से सम्मान पाकर उन्होंने श्रीकृष्ण की छत्रछाया में रहने वाले वृष्णियों की हर्षपूर्वक प्रशंसा की और भोजराज उग्रसेन से कहा:

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ।

यत् पश्यथासकृत् कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८ ॥

aho bhoja-pate yūyam janma-bhājo nṛṇām iha yat paśyathāsakṛt kṛṣṇaṁ durdarśam api yoginām

अर्थ: हे भोजराज! इस संसार के मनुष्यों में तुम्हीं ने जन्म का फल पाया है, क्योंकि तुम उन श्रीकृष्ण को बार-बार देखते हो जिनका दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है। (स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 28)

उन्होंने कहा — वेदों द्वारा गाया उनका यश, उनके चरण धोने वाला जल और शास्त्र-रूप उनकी वाणी समस्त लोक को पवित्र करते हैं; और काल से जिसका सौभाग्य झुलस गया था, वह पृथ्वी उनके चरणकमलों के स्पर्श से फिर बलवती होकर हमारी सब कामनाएँ पूरी कर रही है। “तुम विवाह और रक्त के सम्बन्ध से उनसे जुड़े हो; तुम उन्हें देखते हो, छूते हो, उनके साथ चलते, बतियाते, बैठते, सोते और भोजन करते हो। नरक की ओर ले जाने वाले गृहस्थ-मार्ग पर चलते हुए भी तुम्हारे घरों में स्वयं विष्णु विराजते हैं — वे, जिनके दर्शन मात्र से स्वर्ग और मोक्ष तक की लालसा मिट जाती है।”



बलराम और श्रीकृष्ण से सम्मानित होकर भारत के राजा विस्मय से भगवान् को निहारते हैं और उग्रसेन से कहते हैं कि यदुवंशियों ने ही जन्म का फल पाया है, क्योंकि वे उन श्रीकृष्ण को देखते हैं जिन्हें योगी भी विरले ही देख पाते हैं (श्लोक 23-31)।

नन्दबाबा का आगमन: व्रज से पुनर्मिलन

जब नन्दजी को पता चला कि श्रीकृष्ण के साथ यदुवंशी कुरुक्षेत्र आए हैं, तो वे भी गोपों के साथ, छकड़ों में सामग्री भरकर, उनसे मिलने चल पड़े। उन्हें देखते ही वृष्णिगण ऐसे आनन्द से उठ खड़े हुए जैसे मृत शरीरों में प्राण लौट आए हों, और लम्बे वियोग के बाद उनसे कसकर लिपट गए। वसुदेवजी ने नन्द को अपार प्रेम से हृदय से लगाया, और कंस के दिए एक-एक कष्ट को तथा गोकुल में अपने पुत्रों को नन्द के हाथों सौंपने की विवशता को याद कर विह्वल हो उठे। श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने पालक माता-पिता को गले लगाकर प्रणाम किया, और प्रेम के मारे बोल न सके — आँसुओं से गला रूँध गया था। नन्द और भाग्यशालिनी यशोदा ने दोनों पुत्रों को गोद में बिठाकर बाँहों में भर लिया, और वर्षों के वियोग की पीड़ा उनके हृदय से जाती रही।

रोहिणी और देवकी के यशोदा से वचन

तब रोहिणी और देवकी ने ब्रजेश्वरी को गले लगाया और उनकी मैत्री को स्मरण कर आँसुओं से रूँधे कण्ठ से बोलीं: “तुम दोनों की अटूट मैत्री को कौन भुला सकता है? इन्द्र का ऐश्वर्य पाकर भी हम उसका ऋण नहीं चुका सकतीं। इन दोनों ने अभी अपने माता-पिता को देखा भी न था जब ये तुम्हारी गोद में सौंपे गए, और तुमसे इन्हें लाड़, पोषण, रक्षा और बढ़ने के हर मंगल-संस्कार मिले; तुम्हारी छाया में इन्हें कोई भय न रहा, क्योंकि तुमने इनकी वैसे ही रक्षा की जैसे पलकें आँखों की करती हैं। सच है, सज्जनों के लिए अपने और पराए का भेद होता ही नहीं।”



आँसुओं से रूँधे कण्ठ से रोहिणी और देवकी यशोदा से कहती हैं कि पलकों की तरह उनके पुत्रों की रक्षा करने का ऋण इन्द्र का ऐश्वर्य पाकर भी नहीं चुकाया जा सकता, क्योंकि सज्जन 'अपना-पराया' नहीं जानते (श्लोक 36-38)।

गोपियों का अपने प्रियतम का दर्शन

फिर शुक्रदेवजी ने उन गोपियों की बात कही जिनका श्रीकृष्ण-प्रेम हर प्रेम से बढ़कर था। ब्रज में उन्हें निहारते हुए वे विधाता को इसलिए कोसती थीं कि उसने आँखों में झपकने वाली पलकें बना दीं जो दर्शन में बाधा डालती थीं। अब इतने वर्षों बाद उन्हें पाकर वे उन्हें नेत्रों से भीतर खींच ले गईं और उन्हीं में खो गईं।

श्रीशुक उवाच

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं

यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ।

दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-

स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥

śrī-śuka uvāca gopyaś ca kṛṣṇam upalabhya cirād abhīṣṭaṁ yat-prekṣaṇe dṛśīṣu pakṣma-kṛtaṁ śapanti dṛgbhir hṛdī-kṛtaṁ alaṁ parirabhya sarvās tad-bhāvam āpur api nitya-yujāṁ durāpam

अर्थ: श्रीशुकदेवजी ने कहा: और गोपियाँ, चिरकाल बाद अपने अभीष्ट श्रीकृष्ण को पाकर — जिनके दर्शन के समय वे पलकें बनाने वाले विधाता को कोसती थीं — आँखों के द्वारा उन्हें हृदय में ले गईं, वहाँ भरपूर आलिंगन किया, और सबने वह तन्मयता प्राप्त की जो नित्य योगयुक्त जनों के लिए भी दुर्लभ है। (स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 39)



इतने समय बाद श्रीकृष्ण को पाकर वे गोपियाँ, जो कभी पलकें बनाने पर विधाता को कोसती थीं, उन्हें नेत्रों से हृदय में उतार लेती हैं और वह तन्मयता पाती हैं जो नित्य योगयुक्त जनों को भी दुर्लभ है (श्लोक 39)।

एकान्त में गोपियों को श्रीकृष्ण के वचन

उन्हें इस दशा में देखकर भगवान् ने गोपियों से एकान्त में भेंट की, उन्हें हृदय से लगाया, कुशल पूछी और मुस्कराते हुए कहने लगे: “सखियो, क्या तुम अब भी हमें याद करती हो? अपने स्वजनों के काम से हम चले गए थे, शत्रुपक्ष के नाश में मन लगाए, और बहुत समय तक दूर रहे। क्या तुम हमें कृतघ्न समझकर बुरा तो नहीं सोचती? निश्चय ही भगवान् ही प्राणियों को मिलाते हैं और फिर अलग करते हैं। जैसे वायु मेघों, तिनकों, रुई के फाहों और धूल के कणों को इकट्ठा करके फिर बिखेर देती है, वैसे ही भूतों के रचयिता अपने प्राणियों को जोड़ते और बिछोड़ते हैं।”

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।

दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥

mayi bhaktir hi bhūtānām amṛtatvāya kalpate diṣṭyā yad āsīn mat-sneho bhavatinām mad-āpanaḥ

अर्थ: मेरी भक्ति ही प्राणियों को अमरत्व की ओर ले जाती है। सौभाग्य से तुममें मेरे प्रति वह स्नेह है जो मुझ तक पहुँचा देता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 44)

फिर भगवान् ने अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया। “हे सुन्दरियो! मैं ही समस्त प्राणियों का आदि और अन्त हूँ, और उनके भीतर-बाहर हूँ — जैसे आकाश, जल, पृथ्वी, वायु और तेज हर भौतिक वस्तु के आदि-अन्त हैं और उसमें भीतर-बाहर व्याप्त हैं। ये तत्त्व उपादान-कारण के रूप में रचित वस्तुओं में प्रविष्ट हैं, और आत्मा भोक्ता के रूप में उनमें रहती है; किन्तु दोनों मुझ अविनाशी परमात्मा में ही आश्रित हैं, जो इन दोनों से परे हूँ।”



एकान्त में श्रीकृष्ण गोपियों से पूछते हैं कि क्या वे उन्हें अब भी याद करती हैं, सिखाते हैं कि भगवान् ही सब प्राणियों को जोड़ते और बिछोड़ते हैं, और प्रकट करते हैं कि उनकी भक्ति अमरत्व देती है, क्योंकि वे ही सबके आदि, अन्त और अन्तर्यामी हैं (श्लोक 41-47)।

गोपियों की प्रार्थना

श्रीकृष्ण से यह आत्मज्ञान पाकर गोपियों ने उस पर बार-बार मनन किया, और उस निरन्तर स्मरण से उनका जीव-कोश गिर गया और वे उन्हें प्राप्त हो गई। तब उन्होंने प्रार्थना की:

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥ ४८ ॥

āhuś ca te nalina-nābha padāravindaṁ yogeśvarair hṛdi vicintyam agādha-bodhaiḥ saṁsāra-kūpa-patitottaraṇāvalambaṁ gehaṁ juṣām api manasy udiyāt sadā naḥ

अर्थ: और उन्होंने कहा: हे कमलनाभ! आपके वे चरणकमल, जिनका अगाध बोध वाले योगेश्वर हृदय में चिन्तन करते हैं, संसार-कूप में गिरे हुआ के ऊपर उठने का अवलम्ब हैं। गृहस्थी में लगे रहने पर भी वे चरण सदा हमारे मन में उदित रहें। (स्कन्ध 10, अध्याय 82, श्लोक 48)

इसी प्रार्थना के साथ अध्याय पूर्ण होता है: जो गोपियाँ अभी-अभी परमात्मा से एक हो चुकी थीं, वे बस इतना माँगती हैं कि घर के कामों के बीच भी उनके चरण कभी मन से ओझल न हों।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. पवित्र अनुष्ठान भक्ति के लिए हैं। कर्म से अछूते परशुराम ने लोक को मार्ग दिखाने के लिए यज्ञ किया, और यदुवंशियों ने स्नान, उपवास और दान एक ही लक्ष्य से किया: “श्रीकृष्ण में हमारी भक्ति बनी रहे।” व्रत और तीर्थ तभी सच्चा फल देते हैं जब वे भक्ति को गहरा करें।
2. मिलन और वियोग, दोनों भगवान् की इच्छा हैं। वसुदेव मनुष्यों को दैव का खिलौना कहते हैं; श्रीकृष्ण गोपियों से कहते हैं कि जैसे वायु मेघों को जोड़ती-बिखेरती है, वैसे ही भगवान् प्राणियों को मिलाते और अलग करते हैं। हर मिलन और हर विदाई के पीछे एक ही दिव्य हाथ है।
3. श्रीकृष्ण का दर्शन ही मनुष्य-जन्म का फल है। राजा केवल यदुवंशियों को कृतार्थ मानते हैं, क्योंकि वे उनके पास रहते हैं जिन्हें योगी भी विरले ही देख पाते हैं; जहाँ विष्णु विराजते हैं, वहाँ स्वर्ग और मोक्ष की लालसा मिट जाती है।
4. सज्जनों के लिए “अपना” और “पराया” नहीं होता। यशोदा ने अपने न जने पुत्रों को वैसे ही सँभाला जैसे पलकें आँख को सँभालती हैं; ऐसा प्रेम, जो यह भेद नहीं करता, पवित्र हृदय की पहचान है।
5. प्रेम वह पा लेता है जिसके लिए योग श्रम करता है — और माँगता केवल स्मृति है। यही इस अध्याय का हृदय है। जो पहले से ही भगवान् को सबसे अधिक प्रेम करती हैं, उन्हें भगवान् अपने सर्वव्यापी स्वरूप का ज्ञान क्यों देते हैं? उनके प्रेम की जगह दर्शनशास्त्र रखने के लिए नहीं, बल्कि यह दिखाने के लिए कि जिसके लिए वे तरसती हैं, वह कभी सचमुच दूर था ही नहीं — वे उनके भीतर और चारों ओर वैसे ही हैं जैसे तत्त्व हर रूप में व्याप्त हैं, और उन्हीं ने उन्हें बिछोड़ा और अब मिलाया है। उनसे एक हो जाने पर भी गोपियाँ मोक्ष नहीं, बल्कि यह माँगती हैं कि गृहस्थी के बीच भी उनके चरणकमल सदा मन में उदित रहें। भागवत भगवान् की प्रेममयी स्मृति को हर दूसरी उपलब्धि से ऊपर रखता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

राजा और ग्वाले एक ही क्षेत्र में जुटते हैं, फिर भी भागवत सबसे छोटे दृश्यों पर ठहर जाता है: नन्द के कन्धे पर रोते वसुदेव, दो माताएँ जो पुत्रों के गोद में चढ़ते ही निःशब्द हो जाती हैं, देवकी उस स्त्री को धन्यवाद देती हुई जिसने उनके बच्चे को पाला। द्वारका का वैभव गोकुल के ऋण को नहीं मिटाता, और भगवान् की दिव्यता उनकी कृतज्ञता को नहीं मिटाती; वे नन्द-यशोदा को प्रणाम करते हैं और गोपियों से लगभग संकोच के साथ पूछते हैं कि क्या वे उन्हें अब भी याद करती हैं। गोपियाँ दिखाती हैं कि उन तक लौटने का मार्ग उन नेत्रों से शुरू होता है जो उन्हें ग्रहण करें और उस मन से जो उनके चरणों को छोड़े ही नहीं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज घर का कोई एक साधारण काम चुनें — रसोई, सफ़ाई, या काम पर पैदल जाना — और उसे गोपियों की प्रार्थना के साथ अर्पित करें: “घर के कामों के बीच भी आपके चरणकमल मेरे मन में सदा उदित रहें।” जब-जब वह काम फिर शुरू हो, उसके साथ स्मरण भी फिर शुरू हो; व्यस्त घड़ी ही मिलन का स्थान बन जाए। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह बयासीवाँ अध्याय एक ग्रहण को पुनर्मिलन के उत्सव में बदल देता है। परशुराम से पवित्र हुए क्षेत्र पर द्वारका और व्रज फिर मिलते हैं, राजा श्रीकृष्ण के पास रहने वालों पर ललचाते हैं, और जिन्होंने उन्हें जन्म दिया और जिन्होंने उन्हें पाला, वे माताएँ साथ रोती हैं। फिर भगवान् गोपियों के साथ अकेले में सिखाते हैं कि वे ही सब प्राणियों को जोड़ते-बिछोड़ते हैं, भीतर-बाहर सबमें व्याप्त हैं, और भक्ति से अमरत्व देते हैं — और वे केवल यही माँगती हैं कि उनके चरण सदा मन में रहें। हम भी उनके उपहार नहीं, उनकी स्मृति माँगना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 82।
- श्रृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में मूल, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या भाष्य की प्रतिलिपि नहीं है। किसी प्रकाशक से सम्बद्धता या समर्थन का कोई दावा नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-82-krishna-and-balarama-meet-the-inhabitants-of-vrindavana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट